इस बारिश में

जयशंकर

इस बारिश में

बाहर बारिश के बरसते चले जाने, कभी बढ़ने, कभी थमने की आवाजें थी। जुलाई का दिन। सुबह का वक्त। अभी-अभी प्रभात ने अपने लिए चाय बनाई। चाय को मेज पर रखकर विलायत खान के दरबारी कान्हड़ा के कैसेट को प्लेयर पर चढ़ाया और चाय पीते-पीते सुनने लगे। कभी यह उनका आत्मीय रिकार्ड रहा था। अब वह कैसेट ले आए थे। चाय पीना खत्म हुआ और उन्होंने कैसेट प्लेयर बंद कर दिया। मन अपनी आत्मीय संगीत रचना पर भी नहीं रुका। पिछले कुछ दिनों की तरह मन भटकने

लगा। इन दिनों में, इन पिछले कुछ दिनों में ही ऐसा हुआ कि न कोई किताब उनको बाँध पा रही है और न ही हिंदुस्तानी क्लासिकल के उनके कैसेट्स।

पिछले पाँच-छह बरसों से उनका यह रुटीन-सा बन गया था कि वे सुबह कॉलेज जाने के पहले तक कभी छात्रों को पढ़ाने की जरूरत से तो कभी यों ही कोई न कोई किताब पढ़ लेते, एक-दो अखबारों के पन्ने पलटते। रेडियो पर आठ बजे की न्यूज बुलेटिन सुनते और इसके साथ-साथ हिंदुस्तानी क्लासिकल संगीत की किसी-किसी रचना को सुन ही लेते थे। कुछ ही दिन हुए हैं कि प्रोफेसर प्रभात का रुटीन गड़बड़ा-सा गया है। किसी किताब को पढ़ने की शुरुआत करते है और बीच में ही उसको अधूरा छोड़ देते हैं। निगाहें किताब के पन्नों पर होती है और मन कहीं और भटकता हुआ।

उनके कमरे में बारिश के दिनों का मटमैला उजाला है और मच्छरों को भगाने के लिए जलती हुई अगरबत्ती की गंध। छत पर पंखा धीरे-धीरे चल रहा है। उनकी अलमारी पर दांडी यात्रा पर निकले गांधीजी की अखबारी तस्वीर है और उसके पास पड़ोस की रैक पर उनकी पत्नी और बिटिया की एक तस्वीर, जिसमें माँ और बेटी स्कूल के लिए निकल रहे हैं। माँ पढ़ाने के लिए और बिटिया पढ़ने के लिए। तस्वीर पुरानी है। तब तानिया मैट्रिक में थी। उसी स्कूल में जहाँ पत्नी हिंदी पढ़ाती है।

उनका मन अपने अपार्टमेंट से बाहर निकलने को हुआ। वे स्कूटर की जगह पैदल ही कॉलेज जाने का मन बनाने लगे। उनको बारह बजे अपना पीरियड लेना था। अभी नौ ही बजे थे। वे किसी रेस्तराँ में ही नाश्ता करने की सोचने लगे। रेनकोट पहनने के बाद बारिश के जूते पहन ही रहे थे कि उनके फ्लेट के ऊपर से उतरती उनकी पड़ोसी की बच्ची नजर आई।

'कहाँ जा रही है?'

'रबर लेना है'

'स्कूल नहीं जाना है?'

'मुझे बुखार आ रहा है।'

'फिर रबर मैं ला दूँगा - लेकिन शाम को मिलेगी।'

'थैंक्स अंकल... नीचे तक जो जाना है।'

उसी बच्ची के साथ सीढ़ियों से उतरते हुए उन्होंने सोचा कि रबर भी कितनी सुंदर चीज है। बच्चों के लिए कितनी उपयोगी और तसल्ली देने वाली चीज है। काश, बडी उम्र की भूलों को सुधार ने के लिए रबर जैसी किसी जादुई चीज की खोज हुई होती। भूल शब्द का मन में आना था और प्रभात को सुबह से मन में उतरती चढ़ती अपनी उदासी का कुछ-कुछ सबब समझ में आने लगा। बारिश, बच्ची, भूल, रबर और सीढ़ियों पर पसरा मद्धिम-सा उजाला उनको अपने मन के रेगिस्तानी कोनों में ले जाने लगा। उनको उस स्वप्न का हल्का-सा आभास मिल गया जिनसे उनकी रात की नींद टूटी थी और तब से वे बेचैन बने रहे थे। पिछली कुछ रातों से यह सपना बीच-बीच में आता रहा है। प्रभात की नींद में दखल देता रहा है। सपने में पसरा हुआ संशय है जो उन्हें इन दिनों में परेशान करता रहा है।

स्वप्न में गोधूलि का वक्त होता है। उनके घर के दरवाजे और खिड़कियाँ बंद रहती हैं। वे अपने बचपन के मकान के पिछवाड़े से रसोई की जालीदार खिड़की के पास आते हैं। तभी उन्हें बीस बरस पहले की अपनी पत्नी का रोता हुआ चेहरा नजर आता है। वे धीरे-धीरे अपने करीब रखी हुई चिट्ठियों को आग में झोंक रही हैं, चिमटे से उनकों पूरा-पूरा जला रही हैं, धीरे-धीरे कराह रही हैं। वे वहीं बैठी हुई बिल्ली की देह को सहलाते रहते हैं। उनकी बरसों पहले गुजर चुकी माँ बिल्ली के लिए दूध का कटोरा लिए आती है। चीनी मिट्टी का कटोर टूट जाता है। दूध गिरता है, बिल्ली चिल्लाती है और उनकी युवा पत्नी फटी-फटी आँखों से प्रभात की तरफ देखती है। उनका सपना यहीं टूट जाता है और उनकी नींद भी। कभी इस सपने में चिट्ठियाँ जलने के बाद भी साबुत चिट्ठियों में बदल जाती हैं और कभी प्रभात बारिश में भीगते हुए खिड़की के पास खड़े रहते हैं। कभी-कभार पत्नी की चीख से अपने झूले में लेटी हुई उनकी नवजात बिटिया जाग जाती है, प्रभात बाहर खड़े हुए अपना रेनकोट उतार नहीं पाते हैं। दरवाजे पर दस्तक दे रहे होते हैं।

इंडियन कॉफी हाउस में सुबह की शुरुआत हो रही थी। बिलमोरिया पेवेलियन से लौटे हुए खिलाड़ी बैठे हुए थे। कभी प्रभात अपने शहर के कॉफी हाउस में रोज ही जाया करते थे। वह कॉफी हाउस शहर के मेडिकल कॉलेज के परिसर में था और वहाँ नाटकों के रिहर्सल के बाद वे अपने तीन-चार दोस्तों के साथ बैठा करते थे। धीरे-धीरे वह थिएटर ग्रुप बिखर गया था। नौकरियों और विवाहों से थिएटर से जुड़े लोगों को दूसरे शहरों में बसना पड़ा। उसी ग्रुप में वह लड़की भी थी जिसके साथ प्रभात अपना घर बसाना चाहते थे। ऐसा न हो सका। उस लड़की के विवाह के सात-आठ बरस बाद प्रभात ने अपने ही शहर की उस अध्यापिका से विवाह कर लिया जो उनके ही शहर में

पढ़ाती थी। इन दिनों प्रभात अपने परिवार से दूर, एक दूसरी जगह के कॉलेज के प्रिंसिपल होकर रह रहें हैं। महीने में एकाध बार अपने घर चले जाते हैं। पर इधर जुलाई के आखिरी दिन चल रहे हैं और वे अपने घर नहीं गए हैं।

गर्मियों की छुट्टियों में प्रभात अपने परिवार के साथ शिमला गए थे। वे, उनकी पत्नी और बीस बरस की बिटिया पहले भी अलग-अलग शिमला जा चुके थे। इस बार तीनों साथ थे और एक जगह पर रुके थे। शिमला में उनकी छुट्टियों के मई के दिन अच्छी तरह बीत ही रहे थे कि एक शाम प्रभात ने अपनी पत्नी से जाना कि जब वह कॉलेज की छात्रा के रूप में वहाँ गई थी तब एक लड़के ने उनके लिए अपने प्रेम को व्यक्त किया था। उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा था और उसका मन रखने के लिए वह शिमला में उसका साथ देती रही थी। उससे बातचीत करती रही थी। घुल मिल गई थी। यह सब वे अपनी बिटिया को तब बताने लगी जब उन्होंने एक लड़के को अपनी बिटिया के आसपास चक्कर लगाते हुए देखा था।

यहाँ की हवा ही कुछ ऐसी है - अपनी पत्नी का वह वाक्य, हँसी-हँसी में, उड़ते-उड़ते कही गई वह बात, अपनी जबान होती हुई लड़की से किया गया एक तरह का मजाक प्रभात के लिए असहनीय होता गया। वे चुप से हो गए। उनकी हँसी थम गई। अपनी पत्नी और बिटिया को रिज पर छोड़कर वे होटल चले गए और कुछ देर के बाद लौटने को कह गए। शिमला के रिज पर खड़े गिरजे पर घना अँधेरा उतर आया और तब भी प्रभात नहीं लौटे तो माँ-बेटी होटल की तरफ बढ़ने लगे। उनकी छुट्टियों की, उनकी यात्रा की वह पहली शाम रही जो इस कदर बुझी-बुझी थी। उस दिन खाने के बाद तीनों सैर पर भी नहीं निकले। प्रभात ने तो खाना भी नहीं खाया। सिर में दर्द की कहते रहे और होटल के कमरे के टेबल लैंप के नीचे किसी वैज्ञानिक की आत्मकथा पढ़ते रहे।

उस शाम के बाद से बीच-बीच में ऐसा क्षण आता ही रहा है कि प्रभात को लगा कि वे उनकी पत्नी के जीवन में पहले पुरुष नहीं है और इस बात को वे विवाह के बीस बरस बाद जान रहे हैं। यह सवाल उनके मन को दुखाता रहा हैं। यह बात आँख की किरकिरी-सी उनको चुभती रही है। उनको यह भी लगा है कि अगर वे उस बात को उसी वक्त या उसके दूसरे दिन अपनी पत्नी से विस्तार से गंभीरता के साथ सुन लेते तो अच्छा होता। तब वे इन दिनों की तरह, उस घटना के बारे में, उन रिश्तों के बारें में, उन दिनों के बारे में तरह-तरह के अनुमान नहीं लगाते रहते। संशय का उनका संसार इस तरह फलता, फूलता और फैलता नहीं रहता। जिस बात को इतने संसारी ढंग से, इतनी सहजता और विनोद के साथ कहा गया था वह बात बहुत ज्यादा गंभीर हो ही

नहीं सकती है और इस बात पर लौटने रहने के बावजूद प्रभात उस शाम के अपने खटके को बाहर नहीं निकाल पा रहे थे।

बीच-बीच में उनके मन में अपनी पत्नी को पत्र लिखने को, उसमें इन दिनों की अपनी मनोदशा को व्यक्त करने का ख्याल भी आता रहा है। उनको लगा है कि ऐसा कर पाने से उनका मन हल्का हो सकेगा। वे अपनी पत्नी और उनकी बीस बरस पुरानी पहचान को अनुमानों से नहीं, तथ्यों से जान सकेंगे। संशयों की इन अराजक घड़ियों से उन्हे मुक्ति मिल सकेगी। वैसे भी उन बातों को आमने-सामने कहना प्रभात के लिए असंभव ही होगा। उनकी पत्नी को कैसा लगेगा? क्या वह इतने ओछेपन को बर्दाश्त कर पाएगी? बीस बरस के वैवाहिक जीवन में पहली बार उसे अपने पति के लिए इतनी ज्यादा नफरत महसूस होगी। उनकी बिटिया क्या सोचेगी? क्या उसके बाबा इतना ज्यादा गिर सकते हैं? वे क्या बरसों पुरानी और हल्की-सी मुलाकतों पर इतना ज्यादा, इस तरह व्याकुल, शंकालु हो सकते है? अगर अपनी उम्र के पैतालीसवें बरस में अंग्रेजी के इस अध्यापक का मन इतना छोटा, इतना गया गुजरा, इतना वाहियात है तो उसका इतना पढ़ना, इतने लेखकों-कवियों के संग इतने बरसों तक बने रहना क्या बेकार नहीं गया है?

ऐसे वक्त में प्रभात को अपनी लड़की का चेहरा याद आ जाता है। उनकी लड़की उनसे कह रही होती है कि बाबा एक उम्र में यह सब तो हर लड़की के साथ होता है... कोई उन्हें अपने आँगन में, अपने कॉलेज के गलियारे में, इसी तरह की किसी जगह पर देखता है... उस लड़की के लिए अपने मन में आकर्षण महसूस करता है... और किसी दिन... किसी भी तरीके से... अपने आकर्षण को व्यक्त कर देता है... क्या इसमें लड़की का कोई दोष बनता है... अपनी लड़की का तर्क अपनी, लड़की का वाक्य उन्हें महसूस कराते हैं कि स्वयं लड़की के लिए भी इस तरह के प्रस्तावों का कितना महत्व रहता है? वह कब इस तरह की बातों के बीच अपनी फैसला ले पाती है? इस तरह लड़की का उनके आसपास मंडराना उन्हें यही भर कहता है कि अब वह जवान होने लगी है।

कभी-कभार प्रभात अपनी पत्नी का वह काल्पनिक पत्र पढ़ते हैं लिसमें इस तरह का कुछ लिखा होता है... 'हर लड़की, कोई भी लड़की न चाहते हुए भी एक उम्र में किसी न किसी लड़के की चाहना का केंद्र बन जाती है... कभी उस लड़की को इस बात का पता चलता है और कभी नहीं चलता है... पर पता चल जाने पर भी, वह अपने विवाह को लेकर, अपने प्रेम को लेकर, बेबस, मूक और निष्क्रिय ही बनी रहती है। बनी रह सकती है। ...लड़कियों को कब अपने फैसले करने, अपने लिए फैसले करने का मौका

मिल पाता है।' इस तरह अपनी पत्नी का लंबा-सा पत्र वे कल्पना में पढ़ते चले जाते हैं। उस पत्र से उन्हें अपनी पत्नी के बारे में ऐसा कितना कुछ पता चलता है जिसे वे आज तक नहीं जानते थे। जिसे इतने बरसों में उन्हे जानना ही चाहिए था। स्त्री कितना खामोश रह सकती है। इस तरह उनका संशय कुछ समय के लिए घुल भी जाता है वे कुछ समय तक अपने संदेह की नदी से दूर चले आते है ओर फिर कुछ ऐसा होता है कि शिमला की शाम में निकली संशय की वह नंगी और गंदली नदी, प्रभात के भीतर उतर आती है। प्रभात के अंदर बहने लगती है संशय के छोटे-छोटे कण उनकी आँखों में चुभने लगते हैं।

फिर वही स्वपन लौटने लगता है। जिसमें उनकी पत्नी पुरानी और पीली पड़ती जाती चिट्ठियों को जलाते हुए, रोती हुई नजर आती है। सपने में लाल रंग की पुलोवर पहने हुई उनकी पत्नी अत्यधिक युवा और सुंदर जान पड़ती है। उनको लगता है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि इन बरसों में उस लड़के के साथ उनकी पत्नी का संबंध बना ही रहा हो? वे एक दूसरे को चिट्ठियाँ लिखते रहे हों? शिमला जाने का उनकी पत्नी का विचार इन सबका ही सिलसिला हो? तभी तो वे अक्सर शिमला के होटल के कमरे में अकेले रह जाती थी और जब-जब प्रभात और उनकी बिटिया अपनी सैर से लोटते, उनकी पत्नी का उल्लास और उत्साह देखते ही बनता था। उस वक्त उन्हे खटका क्यों नही लगा? तभी अपनी पत्नी से सवाल कर लेते तो ठीक रहता। अब वह सच बताने से रही। बीस बरस के वैवाहिक जीवन की तथाकथित पवित्रता को कौन बलि चढ़ाना चाहेगा? फिर वे क्या खुद ही शक करने का, शक के बारे में सवाल करने का जोखिम उठा पाएँगे? उनका अपना संकोच ही कितना गहरा होगा? उनकी अपनी आवाज ही टूटती बिखरती-मरती चली जाएगी। उनकी बिटिया भी माँ के साथ खड़ी रहेगी और वे एक साथ दो ऐसे लोगों को खो देंगे जिनसे और उनसे ही वे जुड़े रहते आए हैं।

उनके संशयों से जन्म लेती, उनके दुख और दुविधा की यह दुनिया इन दिनों में उन्हे खाए जा रही है। वे अपनी किताबों से, अपने संगीत से जुड़ नहीं पाते हैं। कॉलेज में किसी छात्र या छात्रा का चेहरा उन्हें बरबस ही अपनी युवा दिनों में खीच लेता है और फिर इस बरस उन्हे एम.ए. फाइनल के छात्रों को शेक्सपीयर का 'ओथेलो' पढ़ाना पड़ रहा है। इस नाटक के मर्म में ही कहीं संशयों, अफवाहों, अविष्वासों, ईर्ष्या और प्रेम का पगलाया परिवेश है। नींद में जाने तक का उनका वक्त कठिन होता जा रहा है। इस बीच प्रभात ने एक दिन डॉक्टर से भी मुलाकात की। डॉक्टर ने वही सब करने सोचने का सुझाव दिया जिसे वे कर नहीं पा रहे हैं, सोच नहीं पा रहे हैं। कहीं उन्हें अपनी माँ के

बुढ़ापे का रोग सिनाइल डिमेन्सिया तो नहीं सता रहा है? पर उस रोग की शुरुआत तो बुढ़ापे में होती है? क्या वे इतनी जल्दी, इतने ज्यादा बूढ़े हो रहे हैं?

एक और बात भी है। उनके अतीत का उनका आत्मीय-सा अंग भी है जिसकी याद दन दिनों उनसे पास लौटती रही हैं। उनके कॉलेज के दिनों में उनके थिएटर से जुड़े होने के दिनों में एक दक्षिण भारतीय लड़की थी जिसके लिए उनके मन में जगह बनती चली गई थी। उनका उस लड़की से मिलना-जुलना होता रहा। वह सब इतनी दूर तक चला गया था कि प्रभात उनके साथ घर बसाने की लालसा लिए हुए रहने लगे। पर ऐसा हो न सका। उनमें ही साहस नहीं था। वे पीछे हट गए। उस लड़की का भी एबार्शन हो जाने के बाद प्रभात के लिए पहले जैसा मन नहीं रहा। पहले प्रभात का ही विवाह हुआ। हालाँकि अपने विवाह के बाद भी वे उससे मिलते रहे थे। लड़की उनके साथ घर बसाने की कोशिशों का जिक्र करती करती रही थी। लड़की की तरफ से वह सब बात ही बात थी। अपने प्रेमी को दे जा सकने वाली सांत्वनाएँ। लेकिन प्रभात तो ऐसा बात तक करने का साहस नहीं जुटा पाए थे। उनके ही दबाव से उस लड़की ने बाद में संबंध नहीं रखा। प्रभात ही डरते चले गए थे। अपने विवाह के कुछ दिनों के बाद उन्हें अपनी प्रेमिका का ख्याल आया था और वे कुछ शामों में उससे मिलते भी रहे थे। लेकिन तब तक प्रेम का पुराना ज्वर उतर चुका था। गृहस्थी अपनी जड़े जमाने लगी थी। जिंदगी अपने पुख्ता पैरों को फैलाने लगी थी। फिर वे उस लड़की से कभी नहीं मिले पर दन दिनों में उस लड़की का साँवला चेहरा और गहरी आँखें प्रभात के पास लौटती रही है। कितने बरस हुए जब वह लड़की इब्सन की नोरा का रोल कर रही थी रिहर्सल के वक्त उसके माथे पर पसीने की बूँदें उतर आती और प्रभात मेडिकल माँलेज की उस प्रयोगशाला में उस साउथ इंडियन लड़की से अपने प्रेम का भविष्य गढ़ते रहते। रिहर्सल के बाद वह प्रभात से अपने अभिनय के बारे में पूछती और वे धीरे-धीरे सिर्फ एक ही वाक्य दोहराते कि 'तुम बहुत सुंदर लग रही थी।'

प्रभात को लगता है कि जिंदगी, हर एक जिंदगी कितने अलग-अलग रास्तों पर चलती है, कितनी अलग-अलग मंजिलों को तय करती है। शुरुआत कहाँ से होती है और अंत कहाँ होता है? हर आदमी को अपनी जिंदगी में कितने-कितने सफर से गुजरना पड़ता है? कितने बीहड़, अकेले और सुनसान जंगलो को पार करना पड़ता है। यह भी कितना सच है कि किसी के विश्वास और किसी पर विश्वास से जीवन कितना सरल और सहनीय हो जाता है। पर विश्वास से नहीं अविश्वास से चलना, जीवन को कितना कठिन और असहनीय बना देता है। इन दिनों में प्रभात ने कितना कुछ सोचा समझा है ऐसा कितना कुछ जाना है जो किसी किताब से नहीं, उनकी अपनी

कच्ची-पक्की जिंदगी से बाहर आया है पैंतालीस बरस की अपनी जिंदगी की भागमभाग, उथल पुथल से बाहर निकली कुछ सच्चाइयाँ जो कभी तसल्ली देती है, तो कभी बेचैनी? एक जगह से देखने पर उन्हें अपनी जिंदगी एक तरह की नजर आती है दूसरी जगह से देखने पर दूसरी तरह की। कभी लगता है कि उन्हें अपनी पत्नी और बिटिया पर पूरा विश्वास रखना चाहिए, सिर्फ विश्वास ही रखना चाहिए और कभी अपनी इस आकांक्षा पर ही आशंका होने लगती है। पुरानी चिट्ठियों के जलने से उठता धुआँ आँखों को तकलीफ पहुँचाता है। शिमला की एक शाम को धुंध में सब सच धुँधलाने लगते हैं। अपने बचपन में देखी गई अपने माँ बाप की लड़ाइयों का ख्याल सताता है। अपने माता पिता की संशयों में लिपटी-लिथड़ी शामों और रातों की चुप्पियाँ अखरने लगती है। प्रभात ने शायद ही कभी अपने माँ-बाप के रिश्तों के बीच उस चीज को महसूस किया था जिसे प्रेम के नाम से पुकारने पर सोचा जा सकता था। अपने बीस बरस की वैवाहिक जिंदगी को जीने का बाद, प्रभात को अपने माता पिता का जीवन किसी दुःस्वप्न की तरह याद आता है।

उनके बचपन की एक स्मृति में खिड़की के नीचे, फर्ष पर अपने बिखरे हुए बालों के साथ माँ का रोना-चीखना शुरू रहता है। पिता गीले कपड़ों को पहनकर ही घर से बाहर निकलने लगते हैं। बस्ती के लोग अपनी-अपनी खिड़की दरवाजों पर खड़े हो जाते हैं और प्रभात गहरी शर्म में डूबा हुआ अपने भय के साथ अपने माँ-बाप के बीच चुपचाप खड़ा रहता है। पर इस वक्त कॉलेज की तरफ जाती हुई सँकरी पगडंडी पर बढ़ते हुए प्रभात के मन में न बचपन को कोई दुःस्वप्न है और न इधर के दिनों के किसी अवसाद की छाया। बारिश के दिनों का हरापन हैं, परिंदों की आवाजे और उड़ानें हैं। मन में बरसों पहले पढ़े गए शरतचंद्र के उपन्यास 'श्रीकांत' के बारिश के दिन है और इन सबसे ज्यादा आज सुबह उनकी ही सीढ़ियों से उतरती उस बच्ची का बुखार के दिनों का मासूम चेहरा जो रबर के लिए नीचे जा रही थी।

उस लड़की का रबर के लिए बुखार में उतरना, अपनी भूलों को अपने पन्नों से मिटाना, रबर का इस सृष्टि में होना, प्रभात को कहीं बहुत ज्यादा हल्का कर गया था। उस वक्त से ही न जाने क्या उन्हें अपने पिछले कुछ दिनों की व्याकुलताएँ निरर्थक-सी महसूस होने लगी थीं। उनको लगा था कि आदमी भूल करता भी हो तो उसको मिटा भी सकता है। और भूलों से बच सकता है। दूसरों की भूलों के लिए दूसरों को माफ भी कर सकता है। और वे कुछ इसी तरह, इसी दिशा में सोचते समझते चले गए थे।

एक और कटलेट का आर्डर देते हुए प्रभात ने महसूस किया कि कितने दिनों के बाद उनके साथ उनकी भूख खड़ी है। उनका स्वाद खड़ा है। बहुत दिनों के बाद उन्होंने बैरे

के लिए टिप्स में पूरी रेजगारी छोड़ दी थी। बाहर की बूँदाबाँदी थम चुकी थी। वे पगडंडी से कॉलेज की तरफ चढ़ने लगे। इतने बरसों में पहली बार वे सड़क की जगह पगडंडी से कॉलेज जा रहे थे। अमलतास के पेड़ के आते-आते वे रुक गए। अपने कॉलेज की विक्टोरियन शैली में खड़ी पुरानी इमारत को देखने लगे। फिर वे सेमल के पेड़ तक आए। वहाँ से एमए फाइनल की वे कक्षाएँ नजर आती थीं जहाँ वे अपने पीरियड लेते रहे हैं। उन कमरों के दरवाजों और दीवारों को देखते हुए प्रभात को लगा कि कितनी बातें हैं, कितनी चीजें हैं जिनसे वे पिछले दिनों में कटते चले गए थे। उन कमरों को बाहर से दूर देखना कितनी आत्मीय अनुभव था जिनमें वे पढ़ते रहे थे। दुपहर में शेक्सपीयर के 'ओथेलो' के बहाने मनुष्य के जीवन में संदेश और ईर्ष्या की जगहों पर उनका कहा गया, समझाया गया अत्यंत मार्मिक और प्रभावशाली रहा और छात्र पीरियड की समाप्ति पर उनके कुछ-कुछ पूछने लगे, गलियारों से उनके साथ उनके चेंबर तक आए, शाम होने होने तक उन्होंने अपनी पत्नी और बिटिया के लिए पत्र लिखे और दोनों में उन्होंने कॉलेज की इमारत के सौंदर्य का, कस्बाती बारिश के इन दिनों का, उन दोनों के लिए खरीदे जा रहे रेनकोट का रंगो का भी जिक्र किया। बरबस ही उनके पत्रों में कुछ पंक्तियाँ शेक्सपीयर के 'ओथेलो' पर आ गई और दुबारा पढ़ते हुए उन्होंने उन पंक्तियों को काट दिया था।

शाम ढल रही थी। वे कॉलेज से निकल कर कैंप एरिया तक पैदल ही आए। कॉटन मार्केट से अपने और पड़ोस की बीमार बच्ची के लिए गुलदस्ते खरीदें तभी उसके लिए रबर खरीदने का ध्यान आया और उन्होंने स्टेशनरी की दुकान से अपने लिए लाइनदार कुछ कागज और पड़ोसी बच्ची के लिए एक कंपास भी खरीदा। उस बच्ची के चेहरे की याद में उनकी सुबह की कुछ यादें भी लिपटी हुई थी। उन्हे लगा कि उनकी आज की सुबह जितनी नीरस थी उससे उनकी आज की शाम काफी दूर जा चुकी थी। यह ख्याल उन्हें पड़ोसी बच्ची को गुलदस्ता और कंपास देते हुए आया था।

रसोई में अपने लिए चाय बनाने से पहले उन्होंने विलायत खान की दरबारी कान्हड़ा को प्लेयर पर चढ़ा दिया। सितार का संसार उनके कमरे में गूँजने और फैलने लगा। वहीं के गुलदान में उन्होंने गुलदस्ते को रख छोड़ा था। कमरा कुछ सितार से और कुछ फूलों की गंध से भरा-सा जान पड़ा। आज उन्होंने रसोई की उस खिड़की को खोल दिया जा हमेशा बंद पड़ी रहती थी। चाय उबल रही थी। सितार अपनी ऊँचाइयों को छू रहा था। शाम के आकाश में तना हुआ इंद्रधनुष, बारिश के इन दिनों में प्रभात को कुछ-कुछ कहता हुआ महसूस हुआ। चाय पीते हुए वे सितार को ही नहीं, इंद्रधनुष को भी सुन रहे थे। इंद्रधनुष को, जिसके बारे में पहली बार उन्हें उनकी दादी ने बताया था।

वहीं से उनका अपनी दादी को भी सुनना शुरू हो गया था। राग दरबारी उठ और उभर रहा था। प्रभात भी अपनी सतह से उठते हुए महसूस हो रहे थे।